श्री नेमिचन्द सुराणा

जैन संस्थाओं का दशा और दिशा

किसी भी शिक्षण संस्था के संगठन का मूल उद्देश्य बच्चों के शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विकास पर निर्भर करता है और वह भी उस संस्था के तपेतपाये, कर्मठ एवं भावनाशील व्यक्तित्व पर आधारित है। यदि वह संस्था धार्मिक शिक्षण पर ध्यान केन्द्रित कर चलती है तो बच्चों के गुणात्मक विकास में योगदान मिलता है। यहां प्रसंग जैन शिक्षण संस्थाओं की प्रभावी भूमिका पर होने के नाते हमें विचार करना होगा कि क्या वस्तुत: ये संस्थायें अपने पुरातन गुरुकुलीय वातावरण के अनुकूल छात्रों के जीवन निर्माण में योगदान करती है कि नहीं? प्राचीन गुरुकुलीय पद्धति केवल बच्चों की दिशा धारा को शिक्षा तक सीमित न रखकर विद्या को जीवन का लक्ष्य मानती थी जिससे बच्चे चरित्रवान, सुयोग्य नागरिक बनकर समाज व राष्ट्र की सेवा के लिए समर्पित होते थे। आज तो जो कुछ दिया जा रहा है वह शिक्षा मात्र है जो जीवकोपार्जन के लक्ष्य की पूर्ति मात्र करती है। विद्या से उसका कोई सरोकार नहीं, समाज व राष्ट्र के प्रति जीवन-जीने की कला का विकास नहीं करती, यही कारण है कि आज भारत जो पुरातन काल में विश्व गुरु कहलाता था, उसकी वह विश्वगुरुता स्वप्निल बन गयी है।

आज आवश्यकता है बच्चों के सर्वांगीण विकास पर आधारित उस विद्या की जो बच्चों में देवत्व की प्राण प्रतिष्ठा करे, जो उसके विवेक को जागृत कर विवेकानंद बनाये, उसे दयानंद बनावे, उसे नर से नरोत्तम बनाये। यदि देश को अपनी दयनीय मन स्थिति से उबार कर विचार क्रान्ति के राह पर अग्रसर कर सके तो गांधी व नेहरू की जमात खड़ी करनी पड़ेगी जो राष्ट्र को एक ऐसे मोड़ पर ला कर खड़ा करे, जो जनतंत्र प्रणाली से देश को अग्रसर कर सके।

पुरातन कालीन शिक्षण संस्थाओं से निकलने वाले छात्र न केवल मेधावी होते थे, वरन् अपने उन्नत चरित्र से संस्थाओं की साख बढ़ाने में योगदान करते थे। संस्थाओं के कर्णधारों का एक विशिष्ट लक्ष्य होता था जिसकी प्राप्ति के लिए अनवरत लगे रहते थे। यह कहूं तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि संस्थायें उनके नाम पर जानी पहचानी जाती थीं, जिनके आकर्षण का बीज ही डूब गया है। आज भी कतिपय शिक्षण संस्थाएं उल्लेखनीय कार्यकर रही है यथा जैन गुरुकुल पंचकुला, जैन गुरुकुल छोटी सादड़ी (जो अब बंद हो गयी है) जैन गुरुकुल ब्यावर, गांधी विद्यालय गुलाबपुरा आदि। देश के अन्य भागों में भी ऐसी संस्थायें चलती थी जो ट्रस्ट द्वारा संचालित होती थी। स्वतंत्रता से पूर्व व बाद ऐसी संस्थाएं संचालित होती थीं जिनका पाठ्यक्रम जैन दर्शन पर आधारित था तथा राजकीय शिक्षातंत्र के आधार पर ही शिक्षा व व्यावहारिक विषयों का अध्ययन व अध्यापन कराया जाता था। उस समय की शिक्षण संस्थाओं के प्राचार्य एवं शिक्षकों का नैतिक आचरण भी उत्कृष्ट था अत: ये शिक्षण संस्थायें समाज में आदृत थीं। वर्तमान में चल रही शिक्षण संस्थायें केवल जैन नाम की प्रतीक मात्र हैं किन्तु जैन दर्शन पर आधारित मूल्यों का स्थान उनमें नगण्य है।

समय के बदलाव के साथ शिक्षा के लक्ष्यों में परिवर्तन होता रहता है और इसका प्रभाव शिक्षा पर पड़े बिना नहीं रहता किन्तु स्वतंत्रता से पूर्व जो शिक्षा का मापदण्ड था उसे पुनर्जीवित करने का प्रयास किया जाना चाहिये। इस दशा में शिक्षा के क्षेत्र में कम्प्यूटर और टेक्नोलोजी का महत्वपूर्ण योगदान है। इस तकनीकी स्वरूप से ये जैन शिक्षण संस्थायें फिर से अपने पुरातन आदर्श को जीवित कर सकती हैं। अब समय आ गया है कि हम नवयुग के निर्माण की आधार शिला रखें और शिक्षा को पुराने ढांचे से बाहर निकालकर बहुआयामी बनावें। शिक्षा वह हो जो हमें संस्कारित करे। वह जीवनोपयोगी हो। स्वावलम्बिनी हो। विज्ञान के तीन शताब्दी के विकास ने इसे सामूहिक आत्महत्या के मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया है। विज्ञान बढ़ा है, पर ज्ञान घटा है। शिक्षा वही है पर विद्या में बड़ी तेज से घटोतरी हुई है। प्रत्यक्षवाद बढ़ा है पर अध्यात्मवाद को मानने वालों की संख्या में कमी हुई हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारे ऋषिगण प्रतिकूलताओं से भरा अभावग्रस्त जीवन जीते थे फिर भी तथाकथित सुखी समद्ध कहे जाने वालों लोगों की तुलना में अधिक शांति भरा जीवन जीते थे। तब का समय सतयुग कहलाता था, अध्यात्म अपने स्वच्छ निर्मल रूप में विद्यमान था। सभी के जीवन में उतरा देखा जा सकता था। इसका एक मात्र यही समाधान है कि विज्ञान के साथ सद्भाव का समावेश हो। भौतिकी और आत्मिकी का समन्वय हो। भौतिकवाद और अध्यात्मवाद दोनों ही क्षेत्रों में जमी विद्रूपताओं को आमूलचूल निकाल बाहर करना जैसा कि ऊपर लिखा गया है कि शिक्षा जीवकोपार्जन के लिए हो किन्तु यह देखना है कि कहीं हम शिक्षा सर्जन के साथ मानवीय मूल्यों व नैतिकता का गला तो नहीं घोट रहे हैं? आज शिक्षा विद्याविहीन होने से नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ है। चरित्र निर्माण के लिए शिक्षा की भूमिका अहम होती है। उज्ज्वल चरित्र, श्रेष्ठ चिंतन एवं शालीन व्यवहार की धुरी है, विद्या जिसमें जीवन जीवंत होता है पर आज ऐसा कुछ नहीं दिखाई देता। जहां चरित्र और आदर्श महान होना चाहिये वहां ग्लेमर की चकाचौंध है। स्वामी विवेकानंद के कथनानुसार ''मानव की अपने जीवन की इच्छाओं का संयमित होकर वास्तविक अवधारणाओं का प्रकट होना, जिसमें मानवीयता का विकास हो, यही शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य है, शिक्षा वह है जो जीवन के साधनों के अर्जन के अलावा आंतरिक चेतना को परिष्कार करे। उसमें समवेदना और भावना का समावेश हो,'' इसी कारण उपनिषद के मंत्र ''सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया'' का उद्घोष किया जा सका। शिक्षा में ऐसे पुनीत एवं दिव्य वातावरण की रचना करे कि समाज महापुरुषों के निर्माण की टकसाल बन जाय। शिक्षा ऐसी हो कि धर्म, दर्शन और संस्कृति संबंधित पाठ्यक्रम सभी में ''जीवन जीने की कला'' निहित हो।

शिक्षा के संबंध में यह दिशा बोध व्यवहार रूप में जीवन में उतरे, हमारे जीवन की समझ पैदा करे, जो विचारों में श्रेष्ठता व भावना में उत्कृष्टता लाए। उपर्युक्त विवरणानुसार आज शिक्षा का स्वरूप दिखाई नहीं देता, अतः शिक्षण संस्थाएं चाहे जैन हो या अजैन उपर्युक्त लक्ष्य को प्राप्त करें।

विजयनगर
पूर्व प्राचार्य श्री गोदावत जैन गुरुकूल, छोटीसादड़ी

■

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org